समाधिमरण

□ श्री चन्दन मुनि

[युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के शिष्य]

जन्मना और मरना अनादिकाल से संसारी जीव के पीछे लगा हुआ है। जन्मे और न मरे—ऐसा कभी संभव नहीं है। वस्तुतः जन्मना मरने का ही द्योतक है और मरना जन्मने की ही पूर्व भूमिका है। कहीं से मरा है तभी तो कहीं उत्पन्न हुआ है। केवल रूपान्तरण है। एक उर्दू शायर ने क्या खूब कहा है—

ना जन्म कुछ, ना मौत कुछ, बस एक बात है।
किसी की आँख लग गई, किसी की खुल गई ।।

परन्तु जीना कैसे चाहिए और मरना कैसे चाहिए ? इसका ज्ञान किसी विरल व्यक्ति को ही होता है। अंग्रेजी में कहावत है—'लाइफ इज एन आर्ट' जीना एक कला है। लेकिन ज्ञानी कहते हैं—मरना बहुत बड़ी कला है, क्योंकि पूरे जीवन का वही निचोड़ है। पूरी समुद्री यात्रा का वही किनारा है। पूरी पढ़ाई का वही परीक्षा-परिणाम है। जैन गगनांगण के ज्योतिर्धर आचार्य पूज्यपाद स्वामी 'मृत्युमहोत्सव' नाम के ग्रन्थ में कहते हैं—

तप्तस्य तपसश्चापि, पालितस्य व्रतस्य च ।
पठितस्य श्रुतस्यापि, फलं मृत्युः समाधिना ।।

अर्थात् तपे हुए तप का, पाले हुए व्रत का और पढ़े हुए ज्ञान का समाधियुक्त मृत्यु ही फल है। यदि मृत्यु असमाधि स्थिति में हुई तो तप, व्रत और श्रुत से क्या लाभ है ? यथार्थ में पूरी साधना का समाधिमरण ही फल है।

भगवान महावीर ने सकाम-मरण तथा अकाम-मरण, ऐसे मृत्यु के दो भेद किए हैं। अकाम-मरण तो बार-बार हुआ और होता ही जा रहा है, परन्तु सकाम-मरण किसी विरल साधक का ही होता है। अकाम मरण से तात्पर्य है—मृत्यु को नहीं चाहना। तीव्र जिजीविषा के वश मृत्यु का नाम सुनते ही रोमांच हो जाना। हाय मृत्यु आ गई, अब मेरा क्या होगा ? मेरे बाल-बच्चों का क्या होगा ? कैसे भी मैं जीवित रहूँ—ऐसा उपाय करो, ऐसी दवा दो, ऐसे अनुभवी डाक्टर या वैद्य को बुलाओ—इस प्रकार दिलगीर हो जाना, अपने आपको असहाय महसूस करना, अकाम-मृत्यु के लक्षण हैं। बाल अज्ञानियों की प्रायः ऐसी ही मृत्यु होती है। वे रोते ही आते हैं और रोते ही जाते हैं। सुना है, अरबी के विख्यात शायर शेख सादी एक बार किसी बच्चे के जन्मोत्सव पर होने वाले प्रीतिभोज में सम्मिलित हुए। लोग हँसते-खिलते खाना खा रहे थे, उधर नवजात शिशु तीक्ष्ण स्वर से रो रहा था। इस स्थिति पर शेख सादी के दिमाग में एक भाव उभर आया। शायरी में बाँधते हुए उन्होंने कहा—

जब तुम आये जगत में, जग हँसमुख तुम रोये।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हँसमुख जग रोये ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु रोते ही आना और रोते ही जाना जीवन-कला का सूचक नहीं है। अज्ञान का ही वह परिणाम है।

सकाम-मरण से तात्पर्य है, इच्छापूर्वक मृत्यु का वरण करना। वासनाओं से विमुक्त होकर मौन की गोद में प्रविष्ट होना। जैनागम कहता है—इहलोक की आशंसा, परलोक की आशंसा, जीवन की आशंसा, मरण की आशंसा और कामभोग की आशंसा मुझे मरण के समय न रहे। साधक संकल्पपूर्वक कहता है कि 'मा मज्झ हुज्ज मरणंते' अर्थात् ये उपर्युक्त वासनाएं—आशंसाएं मेरे परलोक-गमन के समय न रहें। महावीर का अद्भुत चिन्तन है कि जीवनाशंसा की तरह मरण की आशंसा भी नहीं होनी चाहिए। क्योंकि रोगादि कष्टों से घबराकर कुछ मरण की भी माँग करने लग जाते हैं। साधक को उस समय जाग्रत रहने की आवश्यकता है। मृत्यु समय की पराधीनता को ध्यान में लेते हुए कबीर साहिब फरमाते हैं—

कबीरा ! सब ही सधी, एक रही मन मांय।
कायागढ़ घेरो दियां, इज्जत रहसी के नांय॥

अर्थात्—जब कायारूपी किले पर यमदूतों का घेरा लगेगा उस समय मेरी इज्जत रहेगी या नहीं, यह चिन्तनीय है। इस स्थिति का चिन्तन करते हुए शान्तसुधारस गेयकाव्य में उपाध्याय श्री विनयविजयजी लिखते हैं—

प्रतापैर्व्यापन्नं गलितमथ तेजोभिरुदितैर्गतंधैर्योद्योगैः श्लथितमथपुष्टेन वपुषा।
प्रवृत्तं तद्द्रव्यग्रहण-विषये बान्धवजनैर्जने वीनाशेन प्रसभमुपनीते निजशम्॥

इसी भावना का उपजीवी पद्य मैंने एक गीतिका में लिखा है—

मुख से कुछ कहना चाहेगा, पर न कहा जायेगा,
तेज-प्रताप क्षीण होगा, तन शीतल पड़ जायेगा,
अंतिम चिह्न एक ही होंगे, शाह और कंगाल के,
जब बजैं नगाड़े काल के, जब उठे कदम भूचाल के।
प्राण पंछी उड़ने वाला, रखना खुद को संभाल के,
जब बजै नगाड़े काल के॥

फिर भी आत्मस्थ साधकों को वहाँ किंचित् भी भय नहीं होता। वे कहते हैं—

जा मरने से जग डरे, मो मन में आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों, पूरण परमानन्द॥

दरअसल मौत है ही क्या ? मौत तो शरीर की है। आत्मा तो अजर-अमर है। वह तो न कभी मरी और न कभी मरेगी। परलोक-गमन को लेकर गीता में कितना मार्मिक चित्रण हुआ है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

तात्पर्य यह है कि मरण तो केवल जीर्ण वस्त्रों को त्याग कर नवीन परिधान पहनने जैसा है। शरीर जीर्ण हो चुका है। इन्द्रियाँ क्षीण हो चुकी हैं। अब इनके परित्याग में फिक्र कैसा ? भय किसका ? यह तो अवश्यंभावी भाव है। सही देखा जाए तो जन्म के क्षण से ही मौत का प्रारम्भ हो जाता है। एक थैली में सौ रुपये हैं, यदि एक-एक रुपया प्रतिदिन निकाला जाय तो थैली के खाली होने में क्या सन्देह है। हाँ, अन्तिम रुपया निकलते ही वह पूर्णरूपेण शून्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो जाती है, परन्तु रिक्त होना तो पहले से ही था। प्रभु महावीर के शब्दों में इसे 'आवीचिमरण' कहा जाता है। जो इस तत्त्व को हृदयंगम कर लेता है, वह कभी मौत से भयभीत नहीं होता। सप्तमाचार्य श्री डालिगणि के समय में साध्वीप्रमुखा के रूप में काम करने वाली महासती जेठांजी का समाधिमरण बड़ा विचित्र ढंग से हुआ। बीकानेर के थली प्रदेश में 'राजलदेसर' नाम का एक अच्छा कस्बा है। श्री जेठांजी वृद्धावस्था के कारण वर्षों से वहाँ स्थानापन्न थीं। एक बार अचानक वे यावज्जीवन अनशन के लिए तैयार हो गईं। कारण पूछने पर आपने अपना अनुभव सुनाते हुए कहा—'मेरे कानों में दिव्यवादित्रों की ध्वनियाँ आ रही हैं जो अश्रुतपूर्व एवं अवर्णनीय हैं। बस मेरा महाप्रयाण सन्निकट है।' ऐसा कहकर उन्होंने पूरे संघ के मध्य उच्चस्वर से आजीवन अनशन स्वीकार लिया। स्वयं सतियों के मध्य स्थित थीं। पार्श्ववर्ती सध्वियाँ आराधना आदि का श्रवण करवा रही थीं। नमस्कार महामन्त्र का परावर्तन हो रहा था। दो-तीन घंटा तक ऐसा कार्यक्रम चला। सारे संघ के समक्ष इसी वातावरण में महासती श्री जेठांजी बैठी-बैठी स्वर्गगामिनी बन गईं। सारा समाज देखता ही रह गया। लोगों के आश्चर्य का पार न था। सभी मान गए कि इसे कहते हैं, समाधिमरण। किन्तु ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जबकि हमारी पूर्व तैयारी यथार्थतया से हुई हो। समाधिमरण को पाने वाला ही भवजल का किनारा पा सकता है। यही हमारे जीवन का चरम लक्ष्य है।

लब्भन्ति विमला भोए, लब्भंति सुर संपया।
लब्भंति पुत्तं मित्तं च, एगो धम्मो न लब्भई॥

संसार में उत्तम भोग, देव संपदा तथा पुत्र-मित्र आदि स्वजन संबंधियों की प्राप्ति सुलभ है किन्तु एक सद्धर्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org